



**अन्तरा
शब्दशक्ति**

प्रकाशन एवं बहुउद्देशीय संस्था
www.antrashabdshakti.com

शब्द
से संवेदना तक...
लेखन से
परिवर्तन तक...

हिन्दी
हमारी पहचान
हमारी शक्ति

विचार...
चिंतन...
संवाद...
और
एक बेहतर
कल की ओर...

‘समसामयिक प्रश्नों पर आपकी कलम’

(लेख प्रतियोगिता)



रचनाकार :-

सोनिया वर्मा

विचारों की
स्याही से
बदलता समाज...

आयोजक:-

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन

वारासिवनी (म.प्र.)



अन्तरा शब्दशक्ति

प्रकाशन एवं बहुददेशीय संस्था
www.antrashabdshakti.com

हिन्दी
हमारी पहचान
हमारी शक्ति

शब्द से संवेदन तक...
लेखन से परिवर्तन तक...

कलम की शक्ति, समाज की दिशा

संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
तकनीकी संपादक : Webcoodee.com
मुख्य कार्यालय : 15 नेहरू चौक, वारासिवनी,
जिला बालाघाट (म.प्र.) 481331



Antrashabdshaktiprakashan

संपर्क : 9009423393
ईमेल : antrashabdshakti@gmail.com
वेबसाइट : www.antrashabdshakti.com

वैधानिक सूचना

पुस्तक में प्रकाशित सभी रचनाएँ संबंधित रचनाकारों की मौलिक अभिव्यक्तियाँ हैं।
प्रत्येक रचना में व्यक्त विचार, कथ्य एवं अभिमत के लिए संबंधित रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं।
रचनाओं के चयन एवं प्रकाशन का उद्देश्य साहित्यिक अभिव्यक्ति को मंच प्रदान करना
एवं हिन्दी लेखन को प्रोत्साहित करना है।

हिन्दी
से ही है
पहचान...

विचार...
संवाद...
समाज...
और एक बेहतर कल...



लेख प्रतियोगिता

लेखक/लेखिका - सोनिया वर्मा

स्त्री की स्वतंत्रता: निर्णय लेने की आज़ादी या केवल विकल्पों का भ्रम?



स्त्री की स्वतंत्रता: निर्णय लेने की आज़ादी या केवल विकल्पों का भ्रम?

आज की स्त्री के सामने पहले की तुलना में कहीं अधिक रास्ते हैं। वह पढ़ सकती है, नौकरी कर सकती है, अपना व्यवसाय शुरू कर सकती है, विवाह के बारे में अपनी राय रख सकती है, विवाह न करने का निर्णय भी ले सकती है और अपनी पसंद का जीवन चुनने की बात कर सकती है। पहली नज़र में यह सब देखकर लगता है कि स्त्री पहले से कहीं अधिक स्वतंत्र है।

लेकिन यहीं एक सवाल ठहर जाता है—क्या विकल्पों का बढ़ जाना ही स्वतंत्रता है? किसी के सामने दस रास्ते हों, लेकिन उसे चलने की अनुमति केवल दो रास्तों पर हो, तो क्या वह सचमुच स्वतंत्र है? अगर वह अपनी पसंद का रास्ता चुन भी ले, लेकिन उस चुनाव के साथ अपराधबोध, परिवार की नाराज़गी, रिश्ते टूटने का डर या समाज की बातें हमेशा उसके साथ चलती रहें, तो उस चुनाव को कितना स्वतंत्र कहा जा सकता है?

मेरे लिए स्त्री की स्वतंत्रता का प्रश्न केवल बाहर की पाबंदियों का प्रश्न नहीं है। यह उससे भी अधिक गहरा प्रश्न है—'क्या स्त्री अपने जीवन के फैसले लेते समय स्वयं को निर्णय का केंद्र मान पाती है?'

विकल्प सामने हैं, पर चुनाव किसका है?

स्त्री की स्वतंत्रता की शुरुआत शायद उस समय से नहीं होती जब वह घर से बाहर निकलती है। उसकी शुरुआत बहुत पहले हो जाती है—उस समय, जब बचपन में उसे यह बताया जाता है कि उसे कैसी लड़की बनना चाहिए। लड़के के लिए अक्सर कहा जाता है—“अपनी बात पर टिकना सीखो।”

लड़की से कहा जाता है—“थोड़ा समझौता करना सीखो।” लड़के की जिद को आत्मविश्वास कहा जा सकता है, लड़की की जिद को स्वभाव की समस्या। लड़के का अपने भविष्य को लेकर स्पष्ट होना अच्छी बात माना जाता है, जबकि लड़की का बहुत स्पष्ट होना कभी-कभी “ज्यादा सोचने” या “अपनी मनमानी करने” के रूप में देखा जाता है। ये बातें हमेशा कठोर नियमों की तरह नहीं कही जातीं। कई बार वे बहुत सामान्य वाक्यों में हमारे भीतर उतारी जाती हैं—“लड़कियों को इतना नहीं बोलना चाहिए”, “घर की इज़्जत का ध्यान रखना चाहिए”, “सबको साथ लेकर चलना चाहिए”, “बहुत ज्यादा स्वतंत्रता भी ठीक नहीं होती।”

इनमें से बहुत-सी बातें अपने आप में गलत नहीं लगतीं। परिवार और रिश्तों में संवेदनशीलता आवश्यक है। लेकिन समस्या तब शुरू होती है जब संवेदनशीलता की जिम्मेदारी लगभग हमेशा स्त्री के हिस्से में आ जाती है। फिर धीरे-धीरे उसके लिए “अच्छी लड़की” होने का अर्थ केवल अच्छा व्यवहार करना नहीं रह जाता। इसका अर्थ बन जाता है—बहुत ज्यादा सवाल न करना, अपनी इच्छा को पीछे रखना, दूसरों की सुविधा को अपनी सुविधा से पहले देखना और हर निर्णय के बाद यह सोचना कि “लोग क्या कहेंगे?”

यहीं स्वतंत्रता का पहला विरोधाभास दिखाई देता है।

स्त्री को कहा जाता है कि वह पढ़े, आगे बढ़े और आत्मनिर्भर बने। लेकिन उसी के साथ यह भी अपेक्षा की जाती है कि उसकी सफलता ऐसी हो जिससे किसी और को असुविधा न हो। वह आगे बढ़े, लेकिन इतना नहीं कि घर में उसके अधिकारों की परिभाषा बदलने लगे। वह कमाए, लेकिन घर के काम में उसकी जिम्मेदारी कम न हो। वह अपनी राय रखे, लेकिन राय ऐसी हो जिसे परिवार आसानी से स्वीकार कर सके।

तब सवाल यह नहीं रह जाता कि “क्या स्त्री के पास विकल्प हैं?”

सवाल यह हो जाता है कि “क्या वह अपने विकल्पों में से कुछ चुन सकती है, केवल इसलिए क्योंकि वह उसे चुनना चाहती है?”

शिक्षा इस स्वतंत्रता का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। शिक्षा स्त्री को केवल नौकरी पाने की क्षमता नहीं देती ; वह उसे दुनिया को समझने और अपने निर्णयों पर विचार करने की क्षमता भी देती है। लेकिन शिक्षा अपने आप में पूरी जिम्मेदारी नहीं है। एक पढ़ी-लिखी स्त्री भी अपने जीवन के किसी महत्वपूर्ण निर्णय में अपनी इच्छा व्यक्त करने से डर सकती है। दूसरी ओर, आर्थिक रूप से स्वतंत्र स्त्री भी भावनात्मक दबाव में कोई ऐसा निर्णय ले सकती है जिसे वह भीतर से नहीं चाहती। इसलिए आर्थिक स्वतंत्रता और निर्णय की स्वतंत्रता को एक ही चीज़ मान लेना भी अधूरा दृष्टिकोण है। कमाना निश्चित रूप से शक्ति देता है। अपने खर्च के लिए किसी पर निर्भर न होना, अपने काम को पहचान मिलना और अपने भविष्य के बारे में आर्थिक निर्णय ले पाना स्त्री की स्थिति को मजबूत करता है। लेकिन पैसा केवल एक दरवाज़ा खोलता है। उस दरवाज़े से बाहर निकलने का साहस, अपने निर्णय को स्वीकार करने का अधिकार और उस निर्णय के परिणामों के साथ जीने की सामाजिक जगह भी चाहिए। कई बार समस्या यह नहीं होती कि स्त्री के पास पैसा नहीं है।

समस्या यह होती है कि उसके पास अपने पैसे के बारे में निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता नहीं है। कई बार समस्या यह नहीं होती कि उसे बोलने से रोका जाता है। समस्या यह होती है कि उसकी बात सुनी तो जाती है, लेकिन निर्णय पहले ही लिया जा चुका होता है।

“तुम्हारी क्या राय है?” और “तुम क्या चाहती हो?”—इन दोनों प्रश्नों में बहुत अंतर है। पहले प्रश्न में स्त्री से राय माँगी जा रही है। जबकि दूसरे में उसके अस्तित्व को निर्णय का हिस्सा माना गया है। यही अंतर स्वतंत्रता को केवल दिखने वाली चीज़ से वास्तविक अनुभव में बदलता है।

विवाह इस अंतर को बहुत स्पष्ट कर देता है। विवाह को अक्सर दो व्यक्तियों का संबंध कहा जाता है, लेकिन भारतीय सामाजिक संदर्भ में यह केवल दो व्यक्तियों का नहीं, दो परिवारों का भी संबंध बन जाता है। इसलिए स्त्री का निर्णय कई बार केवल उसका निजी निर्णय नहीं माना जाता। वह किससे विवाह करेगी, कब करेगी, विवाह के बाद कहाँ रहेगी, नौकरी करेगी या नहीं, बच्चे कब होंगे, नौकरी और परिवार के बीच संतुलन कैसे बनेगा—इन प्रश्नों पर उसकी राय महत्वपूर्ण तो मानी जाती है, लेकिन हर जगह निर्णायक हो, यह अभी भी सुनिश्चित नहीं है और यहीं “विकल्प” और “स्वतंत्र चुनाव” के बीच की दूरी सामने आती है।

किसी लड़की से कहा जा सकता है कि “तुम नौकरी कर सकती हो, हमें कोई आपत्ति नहीं है।”

लेकिन यदि उसी नौकरी के कारण घर की दूसरी जिम्मेदारियाँ बदलने की कोई चर्चा न हो, तो यह अनुमति है या स्वतंत्रता? यदि उससे कहा जाए कि “तुम अपनी पसंद से विवाह कर सकती हो”, लेकिन साथ में यह भी जोड़ दिया जाए कि उसकी पसंद परिवार की जाति, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति और रिश्तेदारों की स्वीकृति के भीतर होनी चाहिए, तो उसकी पसंद की सीमा कहाँ तक है? यहाँ मेरा उद्देश्य परिवार या विवाह को स्त्री की स्वतंत्रता का विरोधी बताना नहीं है। समस्या संस्था में नहीं, असमान अधिकारों में है।

विवाह किसी स्त्री की स्वतंत्रता छीनता ही है- यह कहना उतना ही गलत होगा, जितना यह मान लेना कि विवाह के बाद स्वतंत्रता का प्रश्न समाप्त हो जाता है। एक स्त्री विवाह में रहकर भी स्वतंत्र हो सकती है, यदि उसकी इच्छाओं, असहमतियों और निर्णयों का सम्मान हो।

यदि हर निर्णय के पीछे उसे स्वीकृति माँगनी पड़ती है तो वह केवल बाहरी स्वतंत्रता है। स्त्री की स्वतन्त्रता में स्वयं उस स्त्री से भी अधिक महत्वपूर्ण हैं उसके सामने बैठे लोग कि वे उसके वाक्यों को सुनते कैसे हैं।

कुछ दीवारें घर के बाहर नहीं, भीतर होती हैं

स्त्री की स्वतंत्रता पर बात करते समय हम अक्सर बाहरी पाबंदियों की चर्चा करते हैं- घर, समाज, परंपरा, विवाह, नौकरी, सुरक्षा आदि। लेकिन मेरे विचार से सबसे जटिल बाधा वह है जो धीरे-धीरे भीतर बन जाती है। एक समय के बाद स्त्री को हर निर्णय के लिए रोकने वाला कोई व्यक्ति सामने नहीं होता। फिर भी वह खुद रुक जाती है। क्यों?

क्योंकि उसे बचपन से यह सिखाया जाता है कि अपने निर्णय के बारे में सोचने से पहले दूसरों के बारे में सोचना है। “अगर मैंने ऐसा किया तो माँ को कैसा लगेगा?”

“अगर मैंने नौकरी छोड़ दी तो लोग क्या कहेंगे?”

“अगर मैंने नौकरी नहीं छोड़ी तो घर में क्या होगा?”

“अगर मैंने अपनी पसंद बताई और किसी को पसंद नहीं आई तो?”

“अगर मैं अपने लिए समय चाहूँ तो क्या मैं स्वार्थी हूँ?”

ये प्रश्न बाहर से पूछे गए प्रश्न नहीं होते ए वे प्रश्न हैं जो कई बार स्त्री के आंतरिक मन की, उसके चिंतन की आवाज़ बन जाती है।

यहीं स्त्री की स्वतंत्रता का मनोवैज्ञानिक पक्ष सामने आता है।

स्वतंत्रता केवल यह नहीं कि कोई हमें कुछ करने से रोक नहीं रहा। स्वतंत्रता यह भी है कि हमें अपने निर्णय के लिए हर बार अपराधबोध महसूस न करना पड़े। “अच्छी स्त्री” की सामाजिक परिभाषा बहुत जटिल है। स्त्री से अच्छी बेटी, अच्छी पत्नी, अच्छी माँ, अच्छी बहू और अच्छी कर्मचारी जैसी हर भूमिका में अपेक्षा की जाती है कि वह सबको संतुष्ट रखे। लेकिन “सबको संतुष्ट रखना” एक ऐसा लक्ष्य है जिसे कोई मनुष्य पूरी तरह प्राप्त नहीं कर सकता। स्त्री के सामने यह एक असंभव स्थिति सदा बनी रहती है। यदि वह अपने लिए कुछ चुनती है तो उसे लगता है कि उसने किसी और के साथ अन्याय किया। यदि वह हर बार दूसरों को चुनती है, तो धीरे-धीरे उसे यह समझना कठिन हो जाता है कि वह स्वयं क्या चाहती है।

मेरे लिए यह स्वतंत्रता का सबसे गहरा प्रश्न है कि क्या स्त्री को अपनी इच्छा पहचानने की अनुमति है? यह प्रश्न सुनने में सरल है, लेकिन वास्तव में बहुत कठिन है। क्योंकि इच्छा केवल “मुझे क्या चाहिए?” से नहीं बनती। हमारी इच्छाएँ भी हमारे वातावरण, अनुभवों और सामाजिक अपेक्षाओं से प्रभावित होती हैं। कभी-कभी हम वही चाहते हैं जो हमें वर्षों से चाहना सिखाया गया है। इसलिए स्त्री की स्वतंत्रता केवल उसे विकल्प देने से पूरी नहीं होगी। उसे यह समझने का अवसर भी देना होगा कि वह उन विकल्पों में से वास्तव में क्या चाहती है।

इस सन्दर्भ में मुझे साहित्य बहुत महत्वपूर्ण लगता है।

साहित्य ने स्त्री की समस्या को केवल “स्त्री बनाम पुरुष” की सरल कहानी की तरह नहीं देखा। अच्छे साहित्य में स्त्री के भीतर का संघर्ष दिखाई देता है ; उसकी इच्छा और सामाजिक अपेक्षा के बीच का तनाव, रिश्तों की मजबूरी, आर्थिक निर्भरता, अकेलापन, सम्मान की तलाश और अपने अस्तित्व को पहचानने की कोशिश।

प्रेमचंद की ‘निर्मला’ को केवल एक दुखद वैवाहिक कहानी के रूप में पढ़ना पर्याप्त नहीं है। उसके पीछे सामाजिक व्यवस्था, विवाह की असमान परिस्थितियाँ और स्त्री के जीवन पर दूसरों के निर्णयों का प्रभाव दिखाई देता है। निर्मला की स्थिति हमें यह सोचने पर मजबूर करती है कि जब किसी व्यक्ति के जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय उसके अपने हाथ में न हों, तो उसके व्यक्तित्व और मन पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है।

इसी तरह शरतचंद्र चट्टोपाध्याय की ‘चरित्रहीन’ जैसी रचना में स्त्री के चरित्र को लेकर समाज की जल्दीबाज़ी दिखाई देती है। स्त्री की इच्छाओं और व्यवहार को समाज जिस नैतिक तराजू पर तौलता है, वह तराजू हमेशा समान नहीं होता।

गीतांजलि श्री की ‘रेत समाधि’ जैसी आधुनिक रचना स्त्री को उम्र, परिवार और सामाजिक भूमिकाओं की तय सीमाओं से बाहर देखने का अवसर देती है। वहाँ स्त्री का जीवन केवल पत्नी, माँ या परिवार के किसी संबंध से परिभाषित नहीं होता; उसके भीतर एक ऐसा व्यक्ति भी मौजूद है जिसका अपना अतीत, अपनी स्मृतियाँ और अपनी इच्छाएँ हैं।

इन रचनाओं को पढ़ते हुए मुझे एक बात बार-बार महसूस होती रही कि स्त्री की समस्या हमेशा यह नहीं रही कि उसके पास कोई आवाज़ नहीं थी। कई बार उसकी आवाज़ थी, लेकिन उसे निर्णय की भाषा में सुनने वाला समाज नहीं था और शायद आज की चुनौती भी यही है।

आज स्त्री अधिक बोल रही है। लेकिन क्या हम उसे सुनने के लिए लोग तैयार हैं? यहाँ “सुनना” भी केवल चुपचाप उसकी बात सुन लेना नहीं है। किसी की बात सुनने और उसे निर्णय में स्थान देने के बीच अंतर है। यदि घर में कोई निर्णय लिया जा रहा है और स्त्री को भी बुलाकर उसकी राय पूछी जाती है, तो यह सकारात्मक कदम है। लेकिन यदि अंतिम निर्णय हमेशा किसी अन्य की सुविधा के आधार पर होता है, तो सहभागिता अभी पूरी नहीं हुई।

स्वतंत्रता की असली परीक्षा शायद यहीं है कि जब स्त्री की इच्छा और किसी दूसरे की इच्छा अलग हो, तब किसकी इच्छा को अधिक महत्व मिलता है? इस प्रश्न का उत्तर किसी एक परिवार, एक वर्ग या एक शहर के लिए समान नहीं होगा। क्योंकि स्त्री की स्थिति भी एक जैसी नहीं है।

शहर की शिक्षित महिला और गाँव की महिला की परिस्थितियाँ अलग हो सकती हैं। आर्थिक रूप से मजबूत परिवार और आर्थिक संघर्ष से गुजर रहे परिवार में स्त्री के विकल्प अलग हो सकते हैं। अविवाहित, विवाहित, तलाकशुदा, विधवा या अकेले रहने वाली स्त्री के सामाजिक अनुभव अलग हो सकते हैं। इसलिए “स्त्री” को एक ही अनुभव में बाँध देना भी उचित नहीं है। स्वतंत्रता की चर्चा तभी सार्थक होगी जब हम यह भी पूछें कि किस स्त्री की ; किन परिस्थितियों में स्वतंत्रता की बात हो रही है? क्योंकि किसी एक महिला के लिए जो छोटा-सा निर्णय है, किसी दूसरी के लिए वही निर्णय जीवन बदल देने वाला हो सकता है।

अपनी आवाज़ तक पहुँचने की आज़ादी

मेरे विचार से स्त्री की स्वतंत्रता का सबसे सुंदर अर्थ यह नहीं है कि वह हर निर्णय परिवार के विरुद्ध जाकर ले। न ही स्वतंत्रता का अर्थ यह है कि विवाह, परिवार, मातृत्व या परंपरा को आधुनिकता के नाम पर छोड़ दे। यदि कोई स्त्री अपने मन से परिवार को प्राथमिकता देती है, घर संभालना चाहती है, बच्चों के साथ रहना चाहती है या अपना जीवन किसी पारंपरिक भूमिका में बिताना चाहती है, तो उसका निर्णय भी उतना ही सम्मान के योग्य है। लेकिन यहाँ एक जरूरी शर्त है कि वह निर्णय वास्तव में उसका हो। यदि वह घर पर इसलिए रह रही है क्योंकि उसे यही जीवन पसंद है, तो यह उसकी स्वतंत्रता है।

लेकिन यदि वह नौकरी करना चाहती थी और उसे इसलिए छोड़ना पड़ा क्योंकि “लोग क्या कहेंगे”, “घर कैसे चलेगा”, “बहू को नौकरी शोभा नहीं देती” या “बच्चों की जिम्मेदारी माँ की ही है”, तो बाहर से दोनों स्थितियाँ एक जैसी दिख सकती हैं, पर भीतर से वे बिल्कुल अलग हैं। यही अंतर स्वतंत्रता को समझने के लिए जरूरी है।

किसी स्त्री को काम करना ही चाहिए-यह भी एक तरह का दबाव है।

किसी स्त्री को घर ही संभालना चाहिए-यह भी दबाव है।

वास्तविक स्वतंत्रता वहाँ है जहाँ दोनों संभावनाओं के बीच निर्णय करने का अधिकार उसके पास हो और उसके निर्णय का मूल्य केवल इसलिए कम न हो क्योंकि वह समाज की उम्मीदों से अलग है।

मुझे लगता है कि हमें स्त्री की स्वतंत्रता को “पुरुष जैसी स्वतंत्रता” के रूप में देखना भी बंद करना चाहिए। स्वतंत्रता किसी दूसरे की नकल नहीं है। हर व्यक्ति के लिए स्वतंत्र जीवन का अर्थ अलग हो सकता है। किसी के लिए करियर महत्वपूर्ण है तो किसी के लिए परिवार और किसी के लिए दोनों के बीच संतुलन। किसी के लिए कला, लेखन या रचनात्मकता तो किसी के लिए अपने शहर से बाहर जाकर पढ़ना। किसी के लिए बस इतना कि वह अपने जीवन के छोटे-बड़े निर्णयों में अपनी बात कह सके। इनमें से कोई भी जीवन अपने आप में श्रेष्ठ नहीं है। श्रेष्ठता इस बात में है कि चुनने का अधिकार किसके पास है।

यहीं से स्त्री की स्वतंत्रता का प्रश्न समाज से निकलकर व्यक्ति के मन तक पहुँच जाता है। क्या लड़की अपने करियर के बारे में बिना यह सोचे निर्णय ले सकती है कि कहीं वह “बहुत महत्वाकांक्षी” तो नहीं लग रही? क्या वह विवाह के बारे में अपनी असहमति व्यक्त कर सकती है?

क्या विवाहित स्त्री यह कह सकती है कि वह अपने काम को केवल इसलिए नहीं छोड़ेगी क्योंकि घर की सारी जिम्मेदारी स्वाभाविक रूप से उसी की मानी जाती है? क्या वह अपने पैसे के उपयोग के बारे में निर्णय ले सकती है? क्या वह परिवार के किसी निर्णय से असहमत हो सकती है और फिर भी “अच्छी बेटी” या “अच्छी पत्नी” बनी रह सकती है? और सबसे महत्वपूर्ण-क्या उसे असहमति के लिए दंडित किए बिना असहमत होने की जगह मिल सकती है?

अगर इन प्रश्नों का उत्तर “हाँ” की ओर बढ़ता है, तो स्वतंत्रता भी वास्तविक होती जाती है। इसलिए मुझे लगता है कि स्त्री की स्वतंत्रता की सबसे बड़ी लड़ाई हमेशा बाहर की दुनिया में नहीं लड़ी जाएगी।

कुछ लड़ाइयाँ घर के भीतर होंगी, कुछ परिवार की सोच में, कुछ संस्थाओं में और कुछ स्वयं स्त्री के भीतर। और इन लड़ाइयों का उद्देश्य परिवार को तोड़ना नहीं, संबंधों को अधिक बराबर बनाना होना चाहिए। एक ऐसा परिवार जहाँ बेटी से पूछा जाए कि वह क्या चाहती है। एक ऐसा विवाह जहाँ पत्नी की असहमति को रिश्ते के खिलाफ विद्रोह न समझा जाए। एक ऐसा कार्यस्थल जहाँ महिला की सफलता को उसके पारिवारिक जीवन के विरुद्ध खड़ा न किया जाए। एक ऐसा समाज जहाँ स्त्री की “ना” को भी उतना ही गंभीर माना जाए जितना उसकी “हाँ” को।

और एक ऐसी मानसिकता जहाँ किसी महिला का अपने लिए कुछ चुनना तुरंत स्वार्थ नहीं माना जाए।

यह बदलाव केवल महिलाओं से अपेक्षित नहीं होना चाहिए। पुरुषों की भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। यदि घर में काम, देखभाल और भावनात्मक जिम्मेदारियाँ केवल स्त्री की जिम्मेदारी मानी जाएँगी, तो उसके पास उपलब्ध विकल्प कागज़ पर भले ही बहुत सारे हों लेकिन वास्तविक जीवन में कम ही रहेंगे।

इसी तरह लड़कों को भी बचपन से यह सिखाना होगा कि स्वतंत्रता केवल अपनी पसंद करने का अधिकार नहीं है; दूसरे व्यक्ति की पसंद का सम्मान करना भी स्वतंत्रता का हिस्सा है। किसी पुरुष का यह कहना कि “मैं अपनी पत्नी को काम करने की अनुमति देता हूँ”-इस वाक्य में ही एक असमानता छिपी है। क्योंकि पत्नी को काम करने के लिए अनुमति क्यों चाहिए? बेहतर वाक्य शायद यह होगा-“हमने मिलकर निर्णय लिया है।” यह छोटा-सा भाषाई अंतर बहुत बड़े सामाजिक अंतर की तरफ इशारा करता है। एक जगह अधिकार है, दूसरी जगह साझेदारी। शायद भविष्य की स्त्री-स्वतंत्रता को इसी साझेदारी की आवश्यकता है। मैं यह भी मानती हूँ कि स्वतंत्रता का अर्थ हर समय अपने लिए लड़ना नहीं है। कभी-कभी स्वतंत्र व्यक्ति समझौता भी करता है। फर्क केवल इतना है कि वह समझौता उसकी अपनी इच्छा से है या उसके पास दूसरा रास्ता नहीं था। जीवन में समझौते सभी करते हैं। पुरुष भी, स्त्री भी। लेकिन यदि समझौता हमेशा एक ही व्यक्ति से अपेक्षित हो, तो वह समझौता नहीं, असमानता बन जाता है।

इसलिए स्त्री की स्वतंत्रता को केवल कानूनों, नौकरियों, शिक्षा या आधुनिक कपड़ों से मापना काफी नहीं होगा। ये सब महत्वपूर्ण हैं, लेकिन इनके साथ एक और परिवर्तन आवश्यक है जो है निर्णय लेने की मानसिक स्वतंत्रता।

स्त्री को अपने निर्णय के बारे में सोचने की जगह चाहिए , उसे गलत निर्णय लेने की भी जगह चाहिए। क्योंकि यदि पुरुष को गलत निर्णय लेने का अधिकार है और स्त्री से हमेशा सही निर्णय की अपेक्षा की जाती है, तो दोनों की स्वतंत्रता समान नहीं है। स्त्री को असफल होने का अधिकार भी चाहिए , उसे अपना रास्ता बदलने का अधिकार चाहिए। उसे यह कहने का अधिकार चाहिए कि “मैंने पहले कुछ और चाहा था, अब मेरी इच्छा बदल गई है।” मनुष्य की पहचान एक बार लिया गया निर्णय नहीं है। हम बदलते हैं, सीखते हैं और अपने बारे में नई बातें समझते हैं। स्त्री को भी यह परिवर्तन जीने की उतनी ही जगह मिलनी चाहिए।

अंत में मैं फिर उसी प्रश्न पर लौटती हूँ जिससे यह लेख शुरू हुआ था-क्या स्त्री स्वतंत्र है क्योंकि उसके सामने कई विकल्प हैं, या इसलिए कि उन विकल्पों में से चुनाव करने की वास्तविक शक्ति उसके पास है? शायद उत्तर इन दोनों के बीच कहीं है।

विकल्प आवश्यक हैं, लेकिन पर्याप्त नहीं।

शिक्षा आवश्यक है, लेकिन पर्याप्त नहीं।

आर्थिक स्वतंत्रता आवश्यक है, लेकिन पर्याप्त नहीं।

कानूनी अधिकार आवश्यक हैं, लेकिन पर्याप्त नहीं।

इन सबके साथ चाहिए-अपनी इच्छा को पहचानने की क्षमता, अपने निर्णय को व्यक्त करने का साहस और उस निर्णय का सम्मान पाने का सामाजिक अधिकार। तभी स्वतंत्रता केवल बाहर से दिखाई देने वाली सुविधा नहीं रहेगी, बल्कि भीतर से महसूस होने वाला अधिकार बनेगी।

शायद स्त्री की स्वतंत्रता का सबसे सरल अर्थ यही है कि

उसे अपने जीवन का निर्णय हमेशा दूसरों के विरुद्ध जाकर न लेना पड़े; बल्कि वह अपने जीवन का निर्णय अपने पक्ष में ले सके। क्योंकि स्वतंत्रता विकल्पों की संख्या नहीं है। स्वतंत्रता वह स्थिति है जहाँ अपने जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय में अपनी आवाज़ केवल सुनी नहीं जाती, बल्कि उसका वास्तविक महत्व भी होता है।

- सोनिया वर्मा



लेखक परिचय

नाम – सोनिया वर्मा
संस्कृत शिक्षिका
पानीपत(हरियाणा)





अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)

अन्तरा
शब्दशक्ति

www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुदेशीय संस्था

कलम की शक्ति, समाज की दिशा

सम्मान-पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि

आ.....**सोनिया वर्मा**.....जी

ने हिन्दी पखवाड़े के अवसर पर आयोजित "एक लेख प्रतियोगिता" में उत्साहपूर्वक सहभागिता करते हुए **समसामयिक विषय पर अपने विचारों को** प्रभावी एवं सार्थक ढंग से अभिव्यक्त किया।

उनकी साहित्यिक **अभिव्यक्ति** एवं रचनात्मक सहभागिता की सराहना करते हुए **अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन** की ओर से यह **सम्मान-पत्र** सादर प्रदान किया जाता है।

आपकी सृजनशीलता एवं साहित्यिक यात्रा के उज्ज्वल भविष्य की हार्दिक शुभकामनाएँ।

हिन्दी विचारों को विस्तार देती है... समाज को जोड़ती है...

हिन्दी
हमारी पहचान...
हमारी शक्ति...

प्रीति सुराना

समकित सुराना

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन
एवं संस्था

डॉ. प्रीति समकित सुराना



शब्द से संवेदन तक...

लेखन से परिवर्तन तक...

